" यह कुर्आन संपूर्ण मानवजाति के लिए (प्रभु का) स्पष्ट वक्तव्य है, और कर्तव्यनिष्ठों के लिए मार्गदर्शन और सदुपदेश " (3 :138)।

सूरः अल्-फ़ातिहा

(कुर्आन शरीफ़ के पहले अध्याय का सटीक हिन्दी अनुवाद)

मूल–लेखन :

हज़रत मौलाना हकीम नूरुद्दीन

अनुवादक

डॉ. खुर्शीद आलम तारीन

2001

प्रकाशक

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द,

मस्जिदे अहमदिय्या, क़लमदान पुरा,

श्रीनगर, कश्मीर १६०००२

www.aaiil.org

अहमदिय्या सम्प्रदाय के संस्थापक
हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब(र.अ.) की घोषणा

"वह व्यक्ति *लानती* है जो हज़रत पैग़म्बरश्री (मुहम्मद)[सल्ल] के सिवा, उन के बाद , किसी और को *नबी* विश्वास करता है ,और उन की *ख़तमे नबूवत* को तौड़ता है।"

(अख़बार *'अल–हकम'* ,क़ादियान ,10जून 1905 ई. ,पृ. 2)

سورة الفاتحة (Al-Faatihah : The Opening)

Allama Hakim Noor-ud-in[RA]

© कॉपीराइट सर्वाधिकार 2001

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द
क़लमदान पुरा ,श्रीनगर ,कश्मीर — 19002

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम — इस अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी प्रचार केन्द्र की स्थापना 1914 ई. में लाहौर में हुई। इस महा प्रचार केन्द्र के नींवदाता हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब[अस] के वरिष्ठ शिष्य थे। इस प्रचार केन्द्र का एकमात्र उद्देश्य इस्लाम की वह उदार, सहिष्णु और शांतिप्रिय छवि पुनः दुनिया के सामने रखना है ,जिस का सहज चित्रण क़ुर्आन शरीफ़ और हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के परमशुभ चरित्र में विद्यमान है। इस संस्था ने अब तक संसार की अनेक प्रमुख भाषाओं में इस्लाम पर अति विपुल साहित्य प्रकाशित किया है ,जो सर्वत्र अपार श्लाघा और ख्याति प्राप्त कर चुका है।

प्रथम हिन्दी संस्करण : 2001 ई.

بسم الله الرحمن الرحيم

सूरः अल्-फ़ातिहा

परिचय

अवतरण काल : यह *'सूरत'* (अध्याय) *मक्की* है यानि हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल.[1] के मक्का से मदीना *हिज्रत*[2] करने से पहले उतरी है। इस *'सूरत'* के मक्की होने की पुष्टि हज़रत अली, इबन अब्बास, क़तादा और अबू अल्–आलिया *रज़.*[3] ने भी की है *(रूह अल्–मानी)*। प्रमाणित कथनों से यह भी ज्ञात होता है कि हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. पर पूर्ण रूप में उतरने वाली पहली *'सूरत'* यही थी। सुप्रसिद्ध *मुहदिस* (हदीस–ज्ञाता) बैहक़ी अपनी पुस्तक *'दलाइल अल्–नबूवह'* में सूरः *अल्–फ़ातिया* के बारे में यह कथन लाए हैं : *'यह क़ुर्आनशरीफ़ का वह (संपूर्ण) भाग है जो सब से पहले उतारा गया।'* इस से पहले बाज़ सूरतें केवल आंशिक रूप में ही उतर चकी थीं, जैसे *सूरः अल्–अलक़, सूरः अल्–मुज़म्मिल, सूरः अल्–मुद्दसिर* इत्यादि। हदीसों से पता

---

1 ***"सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम"*** (अर्थात् 'उन पर अल्लाह की अपार कृपा और शांति वर्षित हो') का संक्षिप्त रूप। जहां भी हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद का पवित्र नाम आये पूरा वाक्य पढ़ा जाए।(अनुवादक)

2 ***'हिज्रत'***, धर्म और प्राणों की रक्षा हेतु स्वदेश त्याग। यह शब्द हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. के मक्का से मदीना चले आने के लिए विशेष है, हिजरी संवत् यानि इस्लामी सन् का आरंभ इसी तिथि से होता है।(अनुवादक)

3 *"रज़ियल्लाहु अन्हु या अन्हुम"* (अल्लाह उस एक व्यक्ति से या उन सब व्यक्तियों से राज़ी हो) का संक्षिप्त रूप।(अनुवादक)

चलता है कि *सूरः अल्–फ़तिहा* इस्लाम के आदिकाल से ही नमाज़ों में पढ़ी जाती थी, और नमाज़ मक्की दौर के आरंभकाल से ही अनिवार्य ठहराई जाचुकी थी। बाज़ कथनों से यह भी मालूम होता है कि इस सूरत का पुनरावतरण *हिज्रत* के बाद मदीना में भी हुआ था। इसी लिए हज़रत अबू हुरैरह, अताअ और ज़ुहरी *रज.* ने इसको मदनी *सूरत* कहा है।

आयतों की संख्या : *बिस्–मिल्लाह* वाली आयत सहित इस में कुल मिलाकर सात आयतें हैं, इसी लिए इस सूरत का एक नाम سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِى ***'सब्अम्मिनल मसानी'*** अर्थात् *सात बार बार दोहराई जाने वाली आयतें* भी है। यह नाम स्वयं कुर्आन शरीफ़ में वर्णित है (देखो १५ : ८७)। इबन हजर ने ***'फ़तह अल्-बारी'***, ८:१२० में वे सब हदीसें एक जगह एकत्र कर दी हैं जिन में ***'सब्अम्मिनल मसानी'*** से अभिप्रेत *सूरः अल्–फ़ातिहा* बतया गया है। हदीसों में इस सूरत के और भी कई नाम आये हैं। इमाम सयूती ने अपनी कृति *अल्–इतिक़ान* में सूरः फ़ातिहा के पच्चीस नामों की चर्चा की है। सूरतों के नाम ***तौक़ीफ़ी*** हैं यानि अल्लाह की दिव्य प्रेरणा द्वारा हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. के श्रीमुख से निकले हुए होने के कारण ईश्वरप्रणीत हैं। सूरतों के नाम उन में वर्णित विषयवस्तु की ओर मार्गदर्शन करते हैं, और ये उन की बाज़ विशेषताओं के परिचायक भी होते हैं। ***फ़ातिहा*** नाम एक महा भविष्यवाणी के रूप में बाइबिल में भी वर्णित है : "उसके हाथ में ***एक खुली पुस्तिका*** थी। उसने अपना दाहिना चरण समुद्र पर और बायां चरण पृथ्वी पर रख कर सिंह के गर्जन के समान भीषण गर्जना की। इस गर्जना को सुन कर सातों मेघ–गर्जन भी अपना–अपना गर्जन करने लगे (प्रकाशन १० : २ व ३)।" यहां *'पुस्तिका'* से अभिप्रेत कुर्आन शरीफ़ की यही छोटी सी सूरत है। *'खुली हुई'* –– यह ***'फ़ातिहा'*** शब्द का शाब्दिक अर्थ है। बाइबिल के लिपिकों की यह आदत थी कि वे अनुवाद करते समय व्यक्तिवाचक संज्ञाओं और नामों का अनुवाद भी कर देते थे, फलतः ***'फ़ातिहा'*** का मूल शब्द छोड़ कर उस का अनुवाद *'खुली हुई'* ग्रहण कर लिया। बाइबिल के इब्रानी (Hebrew)

अनुवादों में मूल शब्द ' ***फ़तूहा'*** अब तक सुरक्षित है। दिव्य वाणी (Revelation) को ईश्वरीय ग्रन्थों में आसमानी जल या वर्षा करके पुकारा गया है, और सात मेघ–गर्जन *सूरः फातिहा* की सात आयतें हैं, और समुद्र और पृथ्वी पर चरण रखने से अभिप्रेत इस के व्यापक उद्देश्य और व्यापक अर्थ हैं।

सूरः अल्-फ़ातिहा कुर्आन शरीफ़ का अंग है : कुर्आन शरीफ़ पर चिन्तनमनन करने से पता चलाता है कि इसके तीन भाग हैं, पहले का नाम *'सब्अुन मसानी'* और दूसरे का नाम *'कुर्आन अज़ीम'* है, जैसा कि फरमाया है : وَ لَقَدْ آتَيْنَاكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَ الْقُرْآنَ الْعَظِيْم "और हम ने ही तुझे सात बार–बार दोहराई जाने वाली (आयतें) और गौरवशाली कुर्आन प्रदान किया" (१७ : ८७)। और तीसरे भाग का नाम ***'तअूज़'*** (प्रभु से शरणयाचना) है, और यह कुर्आन शरीफ़ के अन्तिम दो अध्यायों अर्थात् *सूरः अल्–फ़लक़ और सूरः अल्–नास* पर आधारित है। जिन लोगों ने इस वास्तविकता को नहीं जाना उन्हों ने भूलवश यह कह दिया कि *सूरः अल्–फ़ातिहा* और *मौज़तैन* (कुर्आन की अन्तिम दो सूरतें, जिन में प्रभु से शरण मांगी गई है) कुर्आन शरीफ़ का भाग नहीं। उन के विचारानुसार हज़रत अब्दुल्लाह इबन मस्ऊद रज़. ने कुर्आन की अपनी प्रति में न *सूरः फ़ातिहा* को और न ही *मौज़तैन* को दर्ज किया था। जब कि हदीस के महावेता इमाम नववी ने साफ लिखा है : *'सारे मुसलमान इस बात पर एकमत हैं कि सूरः अल्–फातिहा, सूरः अल्–फ़लक़ और सूरः अल्–नास कुर्आन शरीफ़ का ही भाग हैं .... और इबन मस्ऊद की ओर जो यह कथन जोड़ा जाता है कि वे इन सूरतों को कुर्आन शरीफ़ का अंग नहीं समझते थे, यह आरोप एकदम असत्य और ग़लत है'*(शर्ह अल्–महज़ब)। यही बात हदीस के एक और महाज्ञाता हज़रत इबन हज़म ने कही है, फरमाते हैं : *'यह इबन मस्ऊद पर झूठा आरोप है, और यह कथन बिल्कुल असत्य है'*। कुर्आन के *मशहूर टीकाकार इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी का फैसला यह है : 'इबन मस्ऊद की ओर इस विचार का आरोपण सर्वथा मिथया है।'* हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. की पवित्र जीवनी के सुप्रसिद्ध लेखक मुहम्मद इबन इस्हाक़ कहते हैं : *' मैं ने कुर्आन की ऐसी अनेक हस्तलिखित प्रतियां*

देखी हैं, जिन का आरोपण हज़रत इबन मस्ऊद की ओर किया जाता है, इन में एक प्रति तो दो सौ वर्ष पुरानी थी (यानि स्वयं हज़रत इबन मस्ऊद के काल की लिखी हुई), इस मैं सूरः अल्–फ़ातिहा मौजूद थी'(इबन नदीम : अल्–फहरिस्त)। यही बात इबन हज्र ने लिखी है। यदि इस विचार को कल्पना के लिए सच मान लिया जाए, कि वाकयी इबन मस्ऊद की किसी हस्तलिखित प्रति में सूरः अल्–फ़ातिहा और अन्तिम दो सूरतें मौजूद न थीं, तो इसका मतलब यह होगा कि उन्हों ने उस प्रति में सिर्फ कुर्आन को दर्ज किया होगा अन्य दो भागों को नहीं। वास्तव में इबन मस्ऊद सूरः *अल्–फ़ातिहा* को संपूर्ण कुर्आन का सार और प्रत्येक सूरत का प्राक्कथन समझते थे। चुनांचि कुर्तबी ने अबू बक्र अंबारी के हवाले से यह कथन नक़ल किया है, कि जब हज़रत इबन मस्ऊद से पूछा गया कि आप ने कुर्आन की अपनी प्रति में सूरः *अल्–फ़ातिहा* क्यों नहीं लिखी, तो उन्हों ने उत्तर दिया, यदि मैं इसे लिखता तो प्रत्येक सूरत के साथ लिखता, अर्थात् इस सूरत का संबंध प्रत्येक सूरत के साथ है। आप ने यह नहीं कहा कि यह कुर्आन शरीफ का हिस्सा नहीं। सुहाबा (हज़रत पैग़म्बरश्री के सहवर्ती अनुयायीगण) और मुस्लिम समाज के अन्य महानुभावों में से एक भी ऐसा नहीं कि जो *सूरः अल्–फ़ातिहा* को कुर्आन शरीफ़ का अंग न मानता हो। हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. बुख़ारी की एक हदीस में फरमाते हैं कि : *अल्–फ़ातिहसूरा* कुर्आन शरीफ़ की अन्य सभी सूरतों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित और सर्वाधिक गौरवान्वित है (बुख़. ६५ : १)।

कलेवर : यह सूरत कुर्आन शरीफ़ का जीवन्त चमत्कार और इसकी शिक्षाओं का दर्पण है। इस में प्रभु के दिव्य–गुणों का सर्वोच्च चित्रण और अध्यात्म का उत्कृष्ट बखान है। इस में आध्यात्मिक साधना के चरणों —فنا ***'फ़ना'***, بقا ***'बक़ा'*** और لقا, ***'लिक़ा'*** का उल्लेख है। इस में सृष्टि की उत्पति का और क़यामत का ज़िक्र है। उत्पति का संबंध अल्लाह की **'रब्बूबियत'**(रब–भाव) से है, और क़यामत का संबंध अन्तिम फ़ैसले के दिवस की **'मालिकियत'**(स्वामित्व) से है। और फिर इस में मनुष्यों की सर्वोच्च श्रेणी की चर्चा के साथ–साथ मनुष्यों की उन अधम

और पथभ्रष्ट श्रेणियों की चर्चा भी है, जिन के द्वारा सर्वसंसार में उपद्रव और बिगाड़ उत्पन्न होने वाला था।

टीकाएं : इस सूरत की अनेकों टीकाएं लिखी जा चुकी हैं, कई खंडों में तो उन के नाम ही समाते हैं। इबन नदीम ने अपनी पुस्तक *'अल्–फ़हरिस्त'* में और हाजी ख़लीफ़ा ने *'कशफ़ अल्–ज़नून'* में इन टीकाओं का कुछ ब्योरा दिया है। हमारे पास इस सूरत की हाथ से लिखी हुई बारीक लिखवट में एक टीका साठ जुज़ यानि ६६० पृष्ठि पर आधारित थी। हमारे गुरु हज़रत मिर्ज़ा साहिब (१६३५ ई. से १६०८ ई.) ने इस सूरत की तीन वृहत् टीकाएं लिखी हैं, जिन में की एक उर्दू भाषा में और दो अरबी भाषा में हैं। उर्दू टीका *'बराहीने अहमदिय्या'* में और अरबी टीकाएं *'करामात अल्–सादिक़ीन'* और *'एजाज़ अल्–मसीह'* नामक कृतियों में हैं। वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली होगा जिस को प्रभु कम से कम इन तीन टीकाओं के अध्ययन का सुअवसर प्रदान करे। मिस्र के मुफ़ती मुहम्मद अब्दहू ने भी एक टीका अलग से सूरः *अल्–फ़ातिहा* पर लिखी है। सदरुद्दीन क़ंवी ने भी *सूरः अल्–फ़तिहा* की एक बृहत् टीका लिखी है। हज़रत अली रज़. का कथन है : *यदि मैं चाहूँ तो सूरः अल्–फ़ातिहा पर एक ऊँट के भार जितनी टीका लिखवा सकता हूँ* (अल्–बुर्हान १ : ३)।

सूरः अल्-फ़ातिहा नमाज़ का ज़रूरी अंग है : बाल्यकाल से लेकर इस बुढ़ापे तक जो कुछ खोजबीन मैं ने की है उसका निष्कर्ष यही है कि नमाज़ की हर *'रकअत'* में सूर *अल्–फ़ातिहा* का पढ़ना अनिवार्य है। नमाज़ चाहे अकले पढ़ी जा रही हो या जमाअत के साथ, दोनों सूरतों में *सूरः अल्–फ़तिहा* का पढ़ना ज़रूरी है। और जो भी व्यक्ति अवसर रहते नमाज़ में *सूरः अल्–फ़ातिहा* न पढ़े उस की नमाज़ सही नहीं। यह नियम हर नमाज़ी पर लागू होता है, चाहे नमाज़ी व्यक्तिगत रूप से नमाज़ पढ़ रहा हो, इमाम के पीछे पढ़ रहा हो या स्वयं नमाज़ की इमामत कर रहा हो (सविस्तार बहस केलिए देखें मेरी पुस्तक *'फ़सल अल्–ख़ताब फ़ी क़िराअति फ़ातिहतिल्किताब'*)। चूंकि *सूरः अल्–फ़ातिहा* का हर *रकअत* में पढ़ना ज़रूरी है, अतः एक मुसलमान सामान्यतः इसे दिन में ८० बार या कम से कम ४० बार

पढ़ता है। यदि पांच फ़र्ज़ नमाज़ों, *तहज्जुद, इश्राक़, ज़ुहा, ज़वाल, तहिय्यतुल्वुज़ू , तहिय्यतुल्मस्जिद, और सलातुल्अवाबीन* की सारी *रकअतें* पूरी पूरी अदा की जाएं तो दिन–रात में रकअतों की संख्या ८० हो जाती है, और यदि *सुन्नतों* और *नफ़लों* की संख्या को कम कर दिया जाए तो *रकअतों* की संख्या ४० रह जाती है।

हज़रत इबन अरबी लिखते हैं कि मैं ने जितनी बार *सूरः अल्–फ़ातिहा* को पढ़ा हर बार इसकी नवीन व्याख्या मेरे मन में आई। मैं तो ऐसा दावा नहीं कर सकता, लेकिन गहन अध्ययन के पश्चात् मैं ने यही देखा कि सारा कुर्आन शरीफ़ *सूरः अल्–फ़ातिहा* के भीतर सार रूप में गर्भित है। मेरा अपना विश्वास है कि *सूरः अल्–फ़ातिहा* मूलग्रन्थ है और शेष कुर्आन शरीफ़ इस की टीका।

सूरः अल्-फ़ातिहा द्वारा रोगमुक्ति : *सुहाबा* के काल में एक व्यक्ति को, जो किसी गाँव का मुखिया था, सांप ने डस लिया, *सुहाबा* ने उसका उवचार *सूरः अल्–फ़तिहा* द्वारा किया। अल्लामा इबन क़ैयम ने लिखा है कि जब मैं मक्का में था, और वैद्य की तलाश मेरे लिए मुश्किल थी, तो मैं अकसर अपना इलाज *सूरः अल्–फ़ातिहा* द्वारा कर लिया करता था। इबन क़ैयम की विद्वत्ता का में भक्त हूँ , मैं उन को ऐसा दुर्लभ महानुभाव मानता हूँ कि जिस का प्रकटन लाखों में एक के समान होता है। इस क्षेत्र में मेरा अपना भी अनुभव है, मैं ने अनेक रोगियों पर *सूरः अल्–फातिहा* को पढ़ा और वह स्वस्थ हो गए।

विन्यास और प्रबन्ध : यों तो दिखने में यह एक अति लघू *सूरत* है, किन्तु इस में विषयवस्तु की प्रबन्धता और तरतीब एकदम उत्तम और अद्वितीय है। प्रभु के सद्गुणों, उपासना, कर्माकर्म तथा आध्यात्मिक, नैतिक और शारीरिक रोगों — इन सब विषयों की इस में पर्याप्त शिक्षा मौजूद है। इस का एक–एक शब्द और वाक्य अपने अर्थ की व्यापकता और गूढ़ता की दृष्टि से एक असीम समुद्र है। जिस की संक्षिप्त व्याख्या केलिए भी कई जिल्दों की आवश्यकता होगी। दो ही तो उद्देश्य हैं जिन की पूर्ति केलिये कुर्आन शरीफ़ का अवतरण हुआ है, (क) प्रभु की स्तुति और उस के सद्गुणों का परिचय, (ख) कर्मफल के नियम का प्रतिपादन और मनुष्य को उस के वास्तविक जीवन–लक्षय

तक पहुंचाना। या दूसरे शब्दों में यह कि मनुष्य को प्रभु के रंग में रंग कर उस को लोक–परलोक में सफल और कल्याणमयी बनाना। सूरः *अल्–फ़ातिहा* निम्न विषयों का तत्त्वसार है : १. ईश्वर–प्राप्ति का सरलतम मार्ग और उसके अधिग्रहण के उपाय, २. परमात्मा के निज नाम का प्रतिपादन और उसके महात्मय और उत्तमता का बखान कर मनुष्य को यह बताया कि वह उसके حسن ***'हुसन'*** (सौंदर्य) और احسان ***'एहसान'*** (उपकार) को निहारे, उसके प्रतिफल का उम्मीदवार बनकर और उसके प्रकोप से भयभीत रहकर अपने आध्यात्मिक सफर की मंज़िलें क्रमशः तैय करता चला जाए। सूरत के आरंभ में ही الحمدلله ***अल्-हम्दु लिल्लाह***(समस्त स्तुतियों और प्रशंसाओं का एकमात्र अधिकारी अल्लाह है) के पावन शब्द आए हैं , ये शब्द प्रत्येक इन्सान के अन्तःकरण पर स्वभाविक रूप से अंकित हैं, यही दिव्य छाप सदा इन्सान को एक ईश्वर की ओर आकर्षित करती रही है। समस्त उपासनाओं और सिद्धियों का आरंभ बिंदू भी यही है और स्वर्ग के वासियों की अन्तिम पुकार भी यही है (१० : १०)।

प्रतिपादित विषय : *सूरः अल्–फ़ातिहा* पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह सूरत दो समान भागों में बटी हुई है। पहली तीन आयतों का संबंध अल्लाह से है, और इन में उसके चार ऐसे सद्‌गुणों का उल्लेख है, जो प्रभु के अन्य सभी सद्‌गुणों के मानो मूलस्रोत हैं —— यानि رَبُوبِيَّت **रब्बूबिय्यत** (सृष्टि और फिर प्रतिपालन), رَحمانيت **रहमानियत** (बिन मांगे दयादृष्टि करने का भाव), رحيميّت **रहीमिय्यत** (बार–बार कृपादृष्टि करने का भाव) और مَالِكِيت **मालिकिय्यत** (सर्वाधिकार–संपन्नता या संपूण स्वामित्व)। संपुर्ण ब्रह्माण्ड की सुचारु व्यवस्था और अद्वितीय संचालन इन्ही सद्‌गुणों का प्रताप है। ये आयतें उस अल्लाह (परमात्मा) का परिचय देती हैं जिस को इस्लाम प्रस्तुत करता है। इस्लाम का प्रतिपादित अल्लाह वह सत्ता है जो सर्वगुणसंपन्न और समस्त अवगुणों अथवा त्रुटियों से पूर्णतः रहित है। वह **रब्ब** है, यानि समस्त अनुग्रहों और उपकारों का मूलस्रोत। वह

रहमान है, यानि वरदानों का अपरंपार दाता। वह **रहीम** है, यानि समस्त हितकर प्रार्थनाओं और प्रयासों को स्वीकार कर फलीभूत करनेवाला। वह **मालिक** है, यानि आज्ञाकारी को पुरस्कृत और अवज्ञाकारी को दण्डित करनेवाला। इसी तरह अन्तिम तीन आयतों का संबंध प्राणीमात्र से है। इस भाग में मनुष्य की ओर से प्रार्थना है, कि उसे ऐसा जीवन–पथ मिले जो एकदम सरल और सीधा हो, और यह कि उसे सर्वप्रकार के اِفْراط, ***'इफ़रात,'*** अतिक्रमण तथा सर्वप्रकार के تَفْرِيط ***'तफ़्रीत'***, व्यतिक्रमण से बचाया जाये। बीच वाली आयत स्रष्टा और सृष्टि के संबंध की मानो संयोजी कड़ी है। यही अर्थ उस *हदीसे कुदसी*[4] का है जिस में अल्लाह फ़रमाता है : 'मैं ने *सूरः अल्–फ़ातिहा* को अपने और अपने बन्दे के बीच आधा आधा बांट दिया है' (मुस्लिम)। और फिर इस में वर्णित प्रभुगुणों और प्रार्थना वाक्यों के मध्य एक विस्मयजनक अनुबन्धता व अनुक्रमता पाई जाती है। اَلْحَمْدُ لِلّٰه **अल्हम्दु लिल्लाह** (समस्त स्तुति अल्लाह के लिए है) के मुक़बिल اِيَّاکَ نَعْبُدُ **इय्याक नअबुदु**(हम केवल तेरी ही उपासना करते हैं) है, رَبِّ الْعَالَمِيْن **रब्बुल्आलमीन** (समस्त लोकलोकांतरों का पालनहार–स्रष्टा) के मुक़ाबिल اِيَّاکَ نَسْتَعِيْن **इय्याक नस्तअीन** (हम केवल तुझी से सहायता मांगते हैं) है, اَلرَّحْمٰن **अल्-रहमान** (बिन मांगे देने वाला) के मुक़ाबिल اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْم, **इह्दिना अल्-सिरात् अल्-मुस्तक़ीम**(हमें सीधे मार्ग पर चला) है, اَلرَّحِيْم **अल्-रहीम** (सतत् प्रतिफल प्रदान करनेवाला कृपालु) के मुकाबिल صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِم **सिरात् अल्लज़ीन अन्अमत अलैहिम** (उन लोगों के मार्ग पर जिनको तू ने वरदानों से पुरस्कृत किया) है और مَالِکِ يَوْمِ الدِّيْن **मालिकि यौमिद्दीन** (प्रतिफल के

---

4 *'हदीस कुदसी'* अल्लाह का वह कथन जो हदीसों में तो आया हो परन्तु कुर्आन शरीफ़ का हिस्सा न हो।(अनुवादक)

दिवस का स्वामी) के मुक़ाबिल غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَ الضَّالِّيْنَ **ग़ैरिल्मग़ज़ूबि अलैहिम व लज़्ज़ालीन** (न उनके मार्ग पर जिन पर प्रकोप उतरा, और न पथभ्रष्टों के) है। गम्भीरतापूर्वक देखा जाए तो इस सम्मुखीकरण में अद्‌भुत अनुकूलताएं नज़र आएं गी।

संपूर्ण प्रार्थना : *सूरः अल्–फ़ातिहा* में एक संपूर्ण प्रार्थना सिखलाई गई है, जिस के सदृश प्रार्थना अन्य किसी धर्म में विद्यमान नहीं। यह प्रार्थना इतनी व्यापक और सारगर्भित है कि मनुष्य की सारी आवश्यकताओं पर हावी है, चाहे वे आवश्यकताएं लौकिक हों या अलौकिक, शारीरिक हों या आध्यात्मिक। इस में सुपथ की याचना, उन दिव्य पुरस्कार–प्राप्त पुण्यात्माओं के पदचिन्हों का अनुसरण कर इन्ही दिव्य वरदानों का पात्र बनने की विनति है। इस में उन जातियों और राष्ट्रों के मार्ग से दूर रखे जाने की याचना भी है जो दिव्य वरदान पाने के बाद ईश्वरीय प्रकोप के भागी बन गए, तथा उन लोगों के मार्ग से दूर रखे जाने की याचना भी जिन्हों ने धर्म के मामले में गुमराही और अत्युक्ति से काम लेकर उस का कलेवर ही बदल डाला। दूसरे शब्दों में यह कि हर तरह के अतिक्रमण और व्यतिक्रमण से बचते हुए सैद्धांतिक और व्यवहारिक पथभ्रष्टाओं से बचने की कामना, और जीवन लक्ष्य को पाने की प्रार्थना की गई है।

सूरः अल्–फ़ातिहा में जिस संमार्ग की याचना की गई है, उस का उत्तर अगली सूरत की प्रारंभिक आयतों में देदिया गया है। जहां बताया कि जिस मार्गदर्शन की तुम याचना करते हो उसको हम ने इस क़ुर्आन शरीफ़ की शकल में उतार दिया है, अतः इस पर अमल करके तुम समस्त आध्यात्मिक और भौतिक सफलताओं और उन्नतियों को प्राप्त कर सकते हो। अतएव *सूरः अल्–फ़ातिहा* मूलग्रन्थ और दुआ है और शेष क़ुर्आन इस की व्याख्या और उत्तर है। इस *सूरत* को क़ुर्आन शरीफ़ के शुरू में रखने का प्रयोजन यही है, कि पढ़ने वाले का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कराया जाए, कि पाठक को इस का अध्ययन अमल और मार्गदर्शन पाने केलिए करना चाहिए। सूरत को प्रार्थना का रूप देकर इस का महत्तव बढ़ा दिया है, क्योंकि यदि इसको आज्ञा के

रूप में प्रस्तुत किया जाता तो इस में वह उपादेयता और प्रभाव पैदा न हो पाता। इस सूरत में प्रभु ने प्रार्थना के अनेक तरीके और साधन बताए हैं, और साथ ही प्रार्थना की स्वीकृति के गुर भी। यही वजह है कि हदीसों में प्रार्थना के समय इस सूरत के पढ़ने की विशेष चर्चा है, ताकि मनुष्य का ध्यान उन उपायों और साधनों की ओर केन्द्रित रहे जो प्रार्थना को सार्थक और स्वीकर्तव्य बनाते हैं।

असत्य धारणाओं और सिद्धांतों का खण्डन : इस छोटी सी सूरत में संसार के सभी असत्य धर्म–सिद्धांतों और धारणओं का खंडन भी मौजूद है। इस सूरत में संपूर्ण मानवसमाज की एकता की नींव रख सार्वभौम भ्रातृभाव की स्थापना कर दी गई है। फिर इस में मनुष्य को माध्यमिकता की शिक्षा के साथ–साथ जीवन का उच्च लक्ष्य भी समझा दिया है। विचार और अर्थ की व्यापकता को देखा जाए तो यह सूरत सचमुच गागर में सागर है।

उत्तम महामंत्र : जो लोग जापादि केलिए किसी उत्तम وظیفہ **'वज़ीफ़ह'** (महामंत्र) की तलाश में मारे मारे फिरते हैं, वे याद रखें कि *सूरः अल्–फ़तिहा* से बढ़कर कोई महामंत्र नहीं।

कुर्आन-पाठ संबंधी शिष्टाचार : कुर्आन को कैसे पढ़ा जाए, इसकी विधि भी कुर्आन शरीफ़ में (१६ : ९८) ही वर्णित है : فَإِذَا قَرَأْتَ الْقُرْآنَ فَاسْتَعِذْ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطَانِ الرَّجِيمِ ۔ *'यानि यह कुर्आन शरीफ़ एक अनमोल ख़ज़ाना है, अतः शैतान हर वक्त इस ताक में है कि यहां सेंध लगाए, इस लिए तुम्हें अल्लाह की शरण में आने की कोशिश करनी चाहिए, और दुआ करनी चाहिएं, कि हे प्रभु ! कहीं हम कुर्आन के किसी शुभफल से वंचित न रह जाएं, और शुभ–प्राप्ति के बाद कहीं वह हम से छिन न जाए। अतः इस मार्ग में हमें हर प्रकार की बाधाओं और अनिष्ट से सुरक्षित रख'* (भावार्थ) । हज़रत पैग़म्बर–श्री (सल्ल.) का व्यवहार *(सून्नत)* यही था, कि वे इसी प्रभुआदेश के अनुसार कुर्आनपाठ से पहले परमात्मा से यही प्रार्थना करते थे कि वह उन्हें शैतान के अनिष्ट से सुरक्षित रखे।

सूरः अल्-फ़ातिहा

(क़ुर्आन शरीफ़ की पहली सूरत)

आयतें : ७

(मक्का में उतरी)

سُورَةُ الْفَاتِحَةِ مَكِّيَّةٌ

१ अल्लाह का नाम लेकर, जो अपार दयालु, सतत् कृपालु है (मैं यह दिव्य ग्रन्थ शुरू करता हूँ)।

(١) بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ٥

بِسْمِ اللّٰه *बिस्-मिल्लाह,* यहां ب *बा* استعانت *इस्तिआनत* यानि सहायता और معيت *मअिय्यत* यानि संगति के लिए है, अर्थात् अल्लाह के साथ संबंध स्थापित करते हुए, उसकी सहायता और उसका नाम लेकर। बाज़ लोगों ने गलती की है, जो कह दिया कि जिस चीज़ से सहायता ली जाए वह उपकरण है और अल्लाह को उपकरण बनना सरासर अपमान है। यह विचार सही नहीं,क्योंकि अल्लाह स्वयं फ़रमाता है : اَللّٰهُ الْمُسْتَعَانُ अल्लाह वह है जिस से मदद मांगी जाती है'(12 : 18), ऐसे ही (7 : 128) में हज़रत मूसा को आदेश मिलता है : اِسْتَعِيْنُوْا بِاللّٰه 'अल्लाह से मदद मांगो।', और विचाराधीन सूरत में ही आता है :'हम तुझ ही से सहायता मांगते हैं।' अतः अल्लाह से मदद मांगना न केवल जाइज़ है बल्कि अनिवार्य भी। यह कहना भी सही नहीं कि जब अल्लाह ने हमारी प्रकृति के अन्दर पहले से ही क्षमताएं और शक्तियां रख दी हैं, तो फिर इन के रहते किसी और सहायता की याचना व्यर्थ है। पहला कारण तो यही है कि जो शक्तियां अल्लाह ने हमें इस लोक में प्रदान की हैं वे सीमित हैं। दूसरे यह कि यद्यपि हमारी प्रकृति के अन्दर क्षमताएं रख दी गई हैं तथापि इस दिव्य वरदान के बाद भी हम अल्लाह के सामराज्य से बाहर नहीं हो जाते, और न अल्लाह के अतिरिक्त वरदानों से निस्पृह हो सकते हैं। उपासना उपास्य से, या भक्त अपने ईश्वर से तटस्थ नहीं रह सकते। समस्त दिव्य-ग्रन्थ अक्षर *'बा'* से शुरू होते हैं, यही बात मुहीउद्दीन इब्न अरबी ने भी लिखी हैं। *बा* और इस प्रकार के अन्य अक्षरों के विषय में अरबी भषा का नियम यही है कि इन सें पहले प्रायः कोई

शब्द लुप्त होता है जिस को पढ़ने वाला संदर्भ पढ़कर स्वयं समझ जाता है (*कशाफ़*)। *बिस्मिल्लाह* से पहले का लुप्त भाग स्वयं कुर्आन शरीफ़ में वर्णित है। सब से पहली *'वह्य'* (Revelation) जो हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. पर अवतरित हुई, वह यह थी : اِقْرَأْ بِاسْمِ رَبِّكَ ' अपने पालनहार–स्रष्टा के नाम से पढ़'(96 : 1)। अतः *बिस्मिल्लाह* से पहले اِقْرَأْ अक्रउ यानि मैं पढ़ता हूँ के शब्द लुप्त हैं।

اِسْم *इसम* शब्द وَسم *वसम* से है यानि निशान या चिन्ह, बाज़ ने इसको سمو *सम्व* से बताया है, जिसके माना हैं श्रेष्ठता,उत्कृष्टता तथा उच्चता। अतः *इसम* का अर्थ है संज्ञा या विशेषण, यहां दोनों ही अभीष्ट हैं। अल्लाह नाम है और *रहमान* व *रहीम* इस के विशेषण। अल्लाह, वह सत्ता जो सर्वगुण संपन्न और समस्त अवगुणों अथवा त्रुटियों से पाक हो, अल्लाह प्रभु का व्यक्तिगत नाम है। सीबवैयह और ख़लील के मतानुसार अल्लाह शब्द न तो किसी शब्द से निकला है और न आगे उस से कोई शब्द निकला है (*राज़ी*)। अतः इस की व्युत्पत्ति की बहस व्यर्थ है। अल्लाह शब्द का अनुवाद किसी भी भाषा में नहीं हो सकता। अरब लोग बहुदेववादी थे, लेकिन उन्हों ने भी अल्लाह शब्द कभी किसी देवी–देवता के लिए प्रयुक्त नहीं किया। कुर्आन शरीफ़ में भी यह सर्वत्र विशेष्य के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है, विशेषण के तौर नहीं। जिस से यही सिद्ध होता है कि कुर्आन शरीफ़ में वर्णित अन्य सभी प्रभुनाम अल्लाह शब्द की व्याख्या मात्र हैं। अरबी भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में परमात्मा का निज नाम मौजूद नहीं, अर्थात् कोई ऐसा विशेष नाम जो परमात्मा के सिवा और किसी पर न बोला जाए। अंग्रेज़ी शब्द *गॉड* God देवी देवता सब पर बोला जाता है। *लॉर्ड* Lord शब्द तो इस से भी आम है। संस्कृत का *ओम* शब्द भी एक संयुक्त शब्द है। इब्रानी का *ईल* शब्द अल्लाह या *इल्ला* से निकला है, और *यहवा* शब्द वास्तव में *या हुवा* (= हे वह !) है। सारांश यह कि कुर्आनानुसार अल्लाह वह सत्ता है जिसका अस्तित्व अनिवार्यतः स्वयंभूत एवं स्वयंस्थित हो, और जिस में पूर्णता के सभी गुण विद्यमान हों। और यह कि अल्लाह परमात्मा का निज नाम है। यह *इस्मे आज़म* यानि महा संज्ञा या महामंत्र है, अन्य सभी नाम इसके विशेषण मात्र हैं। ध्यान रहे कि जाप के समय सिर्फ अल्लाह अल्लाह कहना या हू हू करना इस्लामी जाप का तरीका नहीं, जाप और प्रार्थना के लिए पूरा वाक्य चाहिये जैसे لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰه *ला इलाह इल्लाह* (=अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं) या سُبْحَانَ رَبِّيَ الْاَعْلٰى *सुब्हानअ रबियल् आला* (=मेरा पालनहार–स्रष्टा समस्त त्रुटियों से पाक है !)।

اَلرَّحْمٰن। *अल्–रहमान*, अपार दयालु, जो बिना विनिमय, बिना पात्रता, बिना परिश्रम और बिन मांगे देता है, प्रत्येक सृष्ट–वस्तु को उसकी प्रकृति के अनुरूप शक्तियां और क्षमताएं

प्रदान करता है, और उसके जन्म से भी पहले उसकी जीवन–सामग्री की व्यवस्था कर देता है। कुर्आन शरीफ़ का अवतरण भी इसी विशेषण के अंतर्गत हुआ, जैसे फ़रमाया : اَلرَّحْمٰنُ عَلَّمَ الْقُرْاٰنَ यानि *'अल्–रहमान* ने ही कुर्आन शरीफ़ सिखलाया'(55 : 1)। *रहमान*–भाव का प्रदर्शन प्रापक की पात्रता–अपात्रता, आस्तिकता–नास्तिकता, पुण्यता या अपुण्यता को नहीं देखता, आसमानी वर्षा की भांति सर्वत्र प्रदर्शित होता है। सूरज, चन्द्रमा, जल, वायु आदि की देन भी इसी विशेषण के अधीन है।

اَلرَّحِيْم *अल्–रहीम*, बार–बार कृपा करने वाला, कर्मों का दयामय फलदाता, सच्ची और यथोचित मेहनत को विनाश से बचाने वाला। प्रभु के इस विशेषण से लाभांवित होने के लिए प्रयास, अन्तःशोधन और प्रार्थना अनिवार्य है।

रहमान और *रहीम* दोनों शब्द *रहम्* धातु से हैं, *रहमान* **फ़अलान** के वज़न (=आकार) पर और *रहीम* **फ़ओल** के वज़न पर। *फ़अलान* के वज़न पर आने वाले शब्दों की परम विशेषता यह है कि उन में ज़ाती गुण या भाव की अतिशयता पाई जाती है। और *फ़ओल* के वज़न पर आने वाले शब्दों में गुण या भाव का बारंबार दोहराव नज़र आता है। *रहमानिय्यत* यानि *रहमान*–भाव का संबंध संपूर्ण प्राणीजगत् से है, जबकि *रहीमिय्यत* यानि *रहीम*–भाव का संबंध मनुष्यों से विशेष है।*रहमानिय्यत* के अंतर्गत ईश्वरीय–वाणी और कुर्आन शरीफ़ का अवतरण हुआ, और *रहीमिय्यत* के अधीन मनुष्य इन दिव्य वरदानों से लाभान्वित होता आया है। *रहमानिय्यत* के अन्तर्गत मनुष्य को कर्म और प्रयास के लिए सामग्री और क्षमताएं प्राप्त होतीं हैं, और *रहीमिय्यत* द्वारा मनुष्य अपने प्रयासों और कोशिशों को फलवन्त कर लेता है। अल्लाह ने मनुष्यों की पालन–व्यवस्था को मूलतः दो भागों में विभाजित कर रखा है, कर्म या प्रयास से पहले की व्यवस्था, और कर्म या प्रयास के बाद की व्यवस्था। *रहमान* की *रहमत* (=दयालुता) का प्रदर्शन मनुष्य के कर्म या प्रयास से पहले होता है, जैसे सूर्य, जल, वायु आदि का दिया जाना। और रहीम की रहमत का प्रदर्शन मनुष्य के कर्म या प्रयास के उपरांत ही होता है। इस व्याख्या से विदित हुआ कि *रहमान* और *रहीम* दो पर्यायवाची शब्द नहीं। न इन्हें वाक्य–भाव की शक्ति बढ़ाने के लिए महज़ पुनारावृत्ति के तौर लाया गया है। यह बात वही कह सकता है जिसे अरबी शब्दों के अर्थों की गहनता और बारीकियों का पूर्ण ज्ञान नहीं। इस विवेचन के बाद *रहमान* शब्द का *रहीम* शब्द से पहले रखा जाना कितना यथार्थ और विज्ञानसंगत नज़र आता है ! कुर्आन शरीफ़ ने अपने आरंभ में अल्लाह के अन्य कई विशेषणों में से केवल इन्हीं दो विशेषणों को चुना है, ताकि मनुष्य का ध्यान इस वास्तविकता की ओर आकर्षित हो जाए जिसका प्रतिपादन 7 : 155 में हुआ है : رَحْمَتِيْ وَسِعَتْ كُلَّ شَيْءٍ

'मेरी दयालुता हर वस्तु को घेरे हुए है।' अर्थात् ईश्वर के अन्य सभी सद्गुणों का मूलाधार स्नेह, अनुकंपा और दयालुता है।

बिस्मिल्लाह वाली आयत में विशुद्ध ***'तौहीद'*** (=ईश्वर का एकत्व), भक्ति और निःस्वार्थता के उत्तम साधन मौजूद हैं, इसी लिए मुसलमानों को यह शिक्षा है कि वे अपने व्यवहारिक जीवन में इन का भरपूर लाभ उठाएं। हदीस में आता है : *' जो भी महत्वपूर्ण कार्य बिस्मिल्लाह पढ़े बिना ही शुरू किया जाता है वह बेबरकत होता है।'* यह बात इस्लामी शिष्टाचार में शामिल है कि हर महत्त्वपूर्ण कार्य का आरंभ *बिस्मिल्लाह* से किया जाए। यह आयत सूरः *अल्-फ़ातिहा* का अंग है। सूरः *अल्-फ़ातिहा* संबंधी एक हदीस में भी यही कहा गया है, कि *बिस्मिल्लाह* वाली आयत सूरः *अल्-फ़ातिहा* की पहली आयत है (*दार अल्-क़तनी, अध्याय ' बिस्मिल्लाह'* का नमाज़ में पढ़ा जाना)। एक अन्य हदीस के अनुसार हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. दो *सूरतों* के बीच अन्तर *बिस्मिल्लाह* वाली आयत से ही करते थे (*अबू दाऊ, अध्याय 'नमाज़'*)। आशय यह कि हर नई *सूरत* से पहले *बिस्मिल्लाह* वाली आयत का अवतरण होता था, इसी से आप पहली *सूरत* की समाप्ति और दूसरी *सूरत* का आरंभ जान जाते थे। अतः सभी *सूरतों* के आरंभ में *बिस्मिल्लाह* का पाया जाना ईश्वर की आज्ञा से ही है। इसको *सूरत* का अंग मानना या न मानना -- यह एक अलग प्रश्न है, परन्तु इसका प्रत्येक सूरत के आरंभ में एक स्थाई आयत के तौर पर पाया जाना सब को स्वीकार है। यही हज़रत इमामे आज़म (अबू हनीफ़ा) और इमाम अहमद इबन हम्बल का मत है।

जिस प्रकार सूरः *अल्-फ़ातिहा* संपूर्ण कुर्आन का सार है, उसी प्रकार *बिस्मिल्लाह* वाली आयत सूरः *अल्-फ़ातिहा* का तत्वसार।

कुर्आन शरीफ़ ने यह शिक्षा दी कि अल्लाह के पैग़म्बर और अवतार[1] सभी कौमों और जातियों में प्रकट हुए (10 : 47), और यह कि धर्म की समस्त स्थाई शिक्षाएं कुर्आन शरीफ़ में मौजूद हैं (98 : 3)। फिर यह भी लिखा है कि **बिस्मिल्लाह अल्-रहमान अल्-रहीम** का चलन इस्राईल जाति में विद्यमान था, सबा देश की महारानी के नाम जो पत्र हज़रत सुलैमान ने लिखा था, उसके बारे में आता है :*"यह पत्र सुलैमान की ओर*

---

1. *"अवतार"* शब्द को यों प्रतिपादित किया गया है : "He is necessarily a man with a message." (The Bhagavad Gita by S. Chidbhvananada ,Sri Ramkrishna Misson , p.45). यही अर्थ *"रसूल और पैग़म्बर"* का है।एक और हिन्दू विद्वान ने लिखा है : " No man born is a God , whether he is Sri Krishna, Sri Rama or Jesus. They were simply the guiding human spirits of the time and hence, the ignorant man elevates them to godhead."(Remedy the Frauds in Hinduism, by Kuttikhat Purushothama Chon, Bombay, 1991AD, p.34) -- (अनुवादक)।

से है, और यह अल्लाह, अपार दयालु, सतत् कृपालु के नाम से है"(27 : 30)। इसी तरह पारसियों के धर्म-ग्रन्थ में ये शब्द मिलते हैं : بنام یزدان بخشائش گر دادار और बाज़ जगह ये शब्द आये हैं : بنام ایزد بخشاینده بخشائش گر। चूंकि यह विषय बड़ा ही तात्त्विक था, इस लिए कुर्आन शरीफ़ ने इसको क़ायम रखा। यद्यपि पारसियों के वाक्य में वह गहनता और व्यापकता नहीं जो *बिस्मिल्लाह* वाली आयत में है।

२ समस्त सच्ची स्तुतियों का अल्लाह ही अधिकारी है, जो सभी लोकलोकांतरों का रब्ब है, (٢) اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝

३ अपार दयालु, सतत कृपालु, (٣) الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝

الحمد। **अल्-हम्द,** यह शब्द **अल्** और **हम्द** से मिलकर बना है। अरबी भाषा में **अल्** दो प्रकार का होता है, एक **इस्तग़राक़ी** यानि सर्व, सब या All का द्योतक, दूसरा **तख़्सीस** यानि विशेषता या The का सूचक। *हम्द* का शब्द बड़ा ही अर्थपूर्ण है। **हम्द** वह प्रशंसा या स्तुति है जो किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के कारण तथा उसके उन सद्गुणों के कारण की जाए जो दूसरे को आस्कत और वशीभूत कर दें। इस में केवल किसी के उपकारों की स्वीकृति और धन्यवाद ही नहीं, बल्कि उसके सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि और गुणग्राहिता भी है। अतः यह शब्द अपने अन्य पर्यायवाचियों —— مَدَح **मदह,** شُکر **शुक्र** और ثَنا **सना** -- से अधिक व्यापक है। और यह केवल सच्ची स्तुति के लिए ही प्रयुक्त होता है। और इसका प्रयोग केवल उन कार्यों के लिए होता है जो स्वेच्छा और इरादा से किये जाएं *(इमाम राग़िब)*। इस संदर्शानुसार **अल्-हम्दु लिल्लाह** का सही अनुवाद होगा -- *' सर्वप्रकार की उत्तम, संपूर्ण और परम विशिष्ट तथा सच्ची और वास्तविक स्तुति जो आदि से अन्त तक हुई है, और जो होगी, और जो हो सकती है, उस का एकमात्र अधिकारी या पात्र अल्लाह ही है।'* मानो इस शब्द में परमात्मा के अपार सौंदर्य और अनगिनत उपकारों की चर्चा है। और बताया है कि सर्वप्रकार की स्तुतियों का अल्लाह अकेला ही पात्र है, और यह कि उस में विद्यमान सद्गुण अपरंपार हैं।

رَبّ **रब्ब**, पैदा करने वाला, उन्नति देने वाला, क्रमशः पूर्णावस्था तक पहुंचाने वाला,

منعم **मुन्अिम** यानि पुरस्कृत करने वाला, مربی **मुरब्बी** यानि प्रतिपालक, خالق **ख़ालिक़** यानि स्रष्टा, مصلح **मुस्लिह** यानि सुधारक, सरदार, مطاع **मुताअ** यानि जिसकी आज्ञाओं का पालन अनिवार्य हो, متصرف **मुतसर्रिफ़** यानि नियन्त्रक, **मालिक**। इमाम राग़िब ने **'रब्ब'** शब्द का मौलिक अर्थ यह लिखा है : *'किसी वस्तु के रचना उपरांत उसे क्रमशः विकसित करना यहांतक कि वह पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाए।'* बिना संबंध यानि मात्र 'रब्ब' शब्द अल्लाह के अतिरिक्त और किसी सत्ता केलिए प्रयुक्त नहीं हो सकता (इमाम राग़िब)।

आलमीन (**आलम** का बहुवचन), यह शब्द **अिल्मुन** (=जानना) धातु से निकला है।सृष्टि के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक जाति को **आलम** कहते हैं। सृष्टि वर्गों को **आलम** इस लिए कहा जाता है कि वे वह साधन हैं जिसके द्वारा स्रष्टा का अस्तित्व पहचाना जाता है। संपूर्ण मानव समाज भी एक **आलम** है, प्रत्येक जाति या क़ौम भी एक **आलम** है, प्रत्येक युग और काल के लोगों को भी एक **आलम** कह दिया जाता है *(इब्न जरीर)*। अतः **आलम** यानि जगत् या लोक अनेकों अनेक हैं, जैसे भूलोक, खगोल-जगत्, शरीरधरियों का लोक, आत्माओं का लोक, जीव-जन्तुओं का जगत् , वनस्पति जगत्, अचेतन या जड़जगत्। यह शब्द मनुष्य की अच्छी बुरी हालतों या दशाओं पर भी बोल दिया ज़ाता है। तात्पर्य यह कि अल्लाह को छोड़ यह शब्द प्रत्येक व्यक्ति अथवा सत्ता पर बोल दिया जाता है। **आलमीन** शब्द के अन्तर्गत चेतन और अचेतन दोनों ही लोक आजाते हैं।

इस आयत में फ़रमाया है, कि संपूर्ण ब्रह्मांड का **रब्ब** यानि पालनहार-सृष्टा एक ही है अतः औरों को रब्ब के पद पर आसीन करने की हमाक़त न करो। उस की पालनहार शक्तियां अपरंपार हैं। वह संसार के पालनकार्य या नियन्त्रणकार्य में कभी विवश या असमर्थ नहीं होता। उसका प्रतिपालन हर क्षण कार्यरत है। वह सृष्टि रचकर कहीं एकांत में बैठ सृष्टि से विलग नहीं हो गया, और न ही उस ने सृष्टि का सारा कारोबार चन्द गिने चुने नियमों के अधीन कर स्वयं अवकाश प्राप्त कर लिया है, जिस तरह एक इंजन या मशीन बनाने वाला निर्माण के उपरांत अपनी रचना से विलग हो जाता है। यह ब्रह्मांड जिस तरह अपनी सृष्टि के समय प्रभु की सृजनात्मक शक्तियों का मोहताज था, उसी प्रकार अपने अस्तित्व को कायम रखने केलिये उस के प्रतिपालन का मोहताज है। परमात्मा अपनी स्वेच्छा और इरादा से प्रत्येक वस्तु का प्रतिपालन कर रहा है, और प्रत्येक वस्तु अपनी समस्त दशाओं, कालों, अवस्थाओं और क्षमताओं के मामले में प्रभु के प्रतिपालन का ही मोहताज है।

फिर यह आयत इस तथ्य का प्रतिपादन भी करती है, कि ब्रह्मांड का स्रष्टा समस्त त्रुटियों और अपुर्णताओं से पाक और सर्वगुण सम्पन्न है। प्रभु का सृष्टि को रचना और फिर प्रतिपालन करना, यह कार्य एक पूर्वनिश्चित प्रयोजन और व्यवस्था के अधीन, विभिन्न चरणों में संपन्न होता चला आया है। अतः मनुष्यों, जीव-जन्तुओं, वनस्पति जगत् और अचेतन जगत् में क्रमविकास का प्रक्रम सदा से ही जारी है। इस संबंध में **रब्ब** शब्द के बुनियादी अर्थ पर विचार करना चाहिए।

परमात्मा संपूर्ण स्तुति का अधिकारी तभी हो सकता है, जब वह संपूर्ण जगत् का पालनहार-स्रष्टा हो। यदि वह समस्त लोकलोकांतरों का एकमात्र पालनहार-स्रष्टा न होता तो संपूर्ण स्तुति का पात्र भी न ठहरता (यह बात किसी भी तथाकथित देवी-देवता में नहीं पाई जाती, अतः वे वास्तविक स्तुत्य नहीं - अनुवादक)।

इस आयत में लोकप्रिय या प्रशंसनीय बनने की विधि भी है। जो भी व्यक्ति स्वयं को प्रशंसनीय या लोकप्रिय बनाना चाहता है, उसे चाहिए कि वह प्रभु के सद्गुणों को आत्मसात करे, यानि निस्स्वार्थ जनसेवा रूपी प्रभु-स्तुति में लीन हो जाए। प्रभु का यह नियम है कि वह गुणगान करने वाले की ओर प्रशंसा को वापस लौटा देता है और इस तरह वह भी प्रशंसनीय बन जाता है। चुनांचि देख लो, संसार में जिस व्यक्ति ने सब से ज़्यादा प्रभुस्तुति की वह किस तरह सचमुच ***"मुहम्मद"*** यानि ***स्तुति-पात्र*** बन गया, आज सर्वसंसार में उस से ज़्यादा प्रशंसनीय व्यक्ति और कोई नहीं।

जिस तरह संसार की भौतिक व्यवस्था किसी भी क्षण प्रभु के प्रतिपालन से खाली नहीं इसी तरह संसार की आध्यात्मिक व्यवस्था भी उस की पालनहारिता से रिक्त नहीं। हिन्दुओं का यह विचार कि सृष्टि के आरंभ में प्रभु ने आध्यात्मिक व्यवस्था के अधीन चार ऋषियों पर वेदों की प्रकाशना की थी, और तब से अब तक वह मौन धारे हुए है। यह धारणा असत्य है, प्रभु का आध्यात्मिक मार्गदर्शन और उस का अपने परम भक्तों से संलाप पुर्ववत अब भी जारी है। वे लोग भी गलती पर हैं जो यह समझते हैं कि आकाश वाणी या वह्य (Revelation) का दिव्य वरदान बस उन्ही की जाति या क़ौम को प्राप्त था, संसार की अन्य जातियां इस वरदान से सर्वथा वंचित ही रहीं। ये लोग स्वयं को ***आर्य*** '(=प्रभु-पुत्र -- *निरुक्त*) तथा أَبْنَاءُ اللهِ وَ أَحِبَّاءُهُ ***अब्नाउल्लाहि व अहिब्बाउहू*** (=परमात्मा के बेटे और उसके प्रेमपात्र -- कुर्आन, 5 : 17) क़रार देते थे, विचाराधीन आयत में इस अवैज्ञानिक धारणा का भी खंडन है।

विचाराधीन आयत में जनसेवा की शिक्षा भी है, क्योंकि प्रभु के 'रब्ब'-भाव का सुचारु प्रदर्शन उसी वक्त संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति इस के संतुलित प्रकटन में अपना योगदान

देता रहे। केवल अपने ही हितों को दृष्टिगत रखकर अन्य लोगों को उपेक्षित कर देना प्रभु के '**रब्ब**'-भाव के विपरीत है। जिस तरह प्रभु समान रूप से सभी मनुष्यों का प्रतिपालन करता है, उसी प्रकार सच्चे प्रभु-भक्त को भी चाहिए कि वह मनुष्य मात्र की निस्स्वार्थ सेवा करे। प्रभु को सर्वसंसार का एकमात्र पालनहार-स्रष्टा मानने का सहज अर्थ यही हुआ कि दुनिया में बसने वाली सभी जातियां या क़ौमें एक ही रचयिता की रचना होने के कारण एक ही जनपरिवार हैं -- इस तरह विचाराधीन आयत ने समस्त राष्ट्रगत, जातिगत, वर्णगत या भाषागत मतभेदों और प्रभिन्नताओं का समाधान कर दिया है। प्रकृति यानि भौतिक जगत् की तरह आत्मा भी प्रभु की ही रचना है, और उसका भी एक अलग लोक है। इस में हिन्दुओं के उस सिद्धांत का खंडन है जो प्रकृति और आत्मा को प्रभु की भांति अनादि और अनन्त कहता है।

इस आयत में '**रज़ा बिल् क़ज़ा**' यानि प्रभु की मर्ज़ी पर संतुष्ट रहने की अद्भुत शिक्षा भी है। प्रभु को हर दशा में प्रशंसनीय मानने का अर्थ यही हुआ कि उसके हर फ़ैसले पर शीष झुका दिया जाए। बाज़ लोग अपने कष्टों पर परमात्मा को ही कोसने लगते हैं यह व्यवहार इस्लामी शिक्षा और '**हम्द**'(=प्रभुस्तुति) के प्रतिकूल है।

'अल्-हम्दु लिल्लाह' -- यह पद मानव प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल है, क्योंकि मनुष्य स्वभावतः यही चाहता है कि वह अपने पालनहार-स्रष्टा की न केवल स्तुति करे बल्कि उसके सद्गुणों को भी आत्मसात करे।

'**रब्ब**' शब्द का सहज तक़ाज़ा यही है कि मनुष्य लोकपरलोक की असीम उन्नतियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त करता चला जाए, क्योंकि क्रमबिकास (Evolution) एक गतिशील एवं नितांत क्रिया है, इसका क्रम स्वर्गलोक में भी जारी रहेगा।

क़ुर्आन शरीफ़ के आरंभ में ही अल्लाह के सद्गुणों और उसकी अपरंपार स्तुतियों के विषय का प्रतिपादन सिर्फ इस लिए है, कि प्रार्थी का मन-मस्तिष्क पूर्णतया प्रभु की ओर आकर्षित हो, ताकि वह आत्मा की गहराइयों से प्रार्थना करे। और यह बात तभी मुमकिन हो सकती है जब भक्त की नज़र परमात्मा के अद्भुत सौंदर्य और अपरिमित उपकारों पर हो।

इसके बाद ***'अल्-रहमान'*** और ***'अल्-रहीम'*** के शब्द हैं, और यही शब्द सूरः *अल्-फ़ातिहा* की दूसरी आयत हैं। यहाँ इन दो विशेषणों का पुनः ज़िक्र है, क्योंकि इनकी चर्चा इसी सूरत की पहली आयत में गुज़र चुकी है। यह मात्र पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि यहां इसका अपना एक अलग प्रयोजन और महत्त्व है। विषयक्रम को जारी रखते हुए यह बताया कि अल्लाह की '**रबूबियत**' (पालनहारिता) की रीति यही है कि वह जीव के जन्म से भी

बहुत पहले ऐसी सामग्री बिन मांगे उपलब्ध करा देता है, जिस पर उस की उन्नति और विकास निर्भर है। और जब जीव इस सामग्री का सही इस्तेमाल और अच्छे कर्म करता है तो अल्लाह अपनी **'रहीमिय्यत'**(कृपादृष्टि) का प्रदर्शन कर उस की क्रियाओं को फलीभूत कर उसको उन्नति के नवीन अवसर प्रदान करता है। मानो ***'रब्बुल्आलमीन'*** में पालनहारिता का एक दावा था, ***'रहमान'*** और ***'रहीम'*** भाव उसीका व्यवहारिक सबूत हैं। इस प्रकार ***सूरः अल्-फ़ातिहा*** में अल्लाह ने अपने पांच नामों की नहीं बल्कि सात नामों की चर्चा की है : 1.**'अल्लाह'**, 2.**'अल्-रहमान'**, 3. **'अल्-रहीम'**, 4. **'रब्बुल्आलमीन'**, 5. **'अल्-रहमान'**, 6. **' अल्-रहीम'**, (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि आयत संख्या 3 में **रहमान** और ***रहीम*** नामों की पुनरावृत्ति नहीं), 7. **'मालिकि यौमिद्दीन'**।

४ (और) प्रतिफल के समय का स्वामी है।

(٤) مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۝

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ **'मालिकि यौमिद्दीन'** : **'मालिक'**, वह व्यक्ति जिसको किसी चीज़ पर जाइज़ क़बज़ा और अधिकार प्राप्त हो, ضَابِط **'ज़ाबित़'** (व्यवस्थापक), مُتَصَرِّف **'मुतसर्रिफ़'** (नियन्त्रक)। इसका धातु **'म – ल – क'** है, अरबी के शब्दकोशविज्ञानियों के मतानुसार यह धातु शक्ति, भाव की तीव्रता और अनुक्रम का बोधक है। **'मलक'** बादशाह या सम्राट को कहते हैं, उसका अधिकारक्षेत्र राजनीति तक ही सीमित है, लेकिन **मालिक** को अपनी **मिल्क** (संपत्ति) पर पूर्ण अधिकार होता है। इस में भी अरबी भाषा का एक अति सुन्दर नियम दृष्टिगोचर होता है, वह यह कि जब एक ही धातु से विभिन्न शब्द निकले हों, तो जिस शब्द में जितने अक्षर ज़्यादा होंगे, उसका भाव और अर्थ भी उतना ही ज़्यादा होगा। यहां भी **मलक** और **मालिक** के अक्षरों की संख्या में अन्तर है, **मलक** में केवल तीन और **मालिक** में चार अरबी अक्षर हैं। इसी लिए **मालिक** शब्द का भाव **मलक** की तुलना में काफ़ी ज़्यादा है।

يوم **'यौम'**, का अर्थ है दिन, समय। कवि कहता है يوماه يوم ندى و طعان यानि मेरे प्रशस्त प्रियतम पर दो ही वक्त आते हैं, या तो वह दानशीलता में कार्यरत होता है या शत्रु का संहार करने में। जब कोई कहे 'मैं आज यह काम कर रहा हूं' तो तात्पर्य यह 24 घंटे वाला दिन नहीं होता, बल्कि अभिप्राय वर्तमान काल होता है। इसी लिए शब्दकोशज्ञान के **इमाम** (महावेत्ता) लिखते हैं, कि **यौम** शब्द दिन के अलावा समय का बोधक भी है

(लिसान अल्-अरब)।

الدين **'अल्-दीन'** : *बुख़ारी* में इस की व्याख्या यों आई है, *'यहां **दीन** से अभिप्रेत अच्छे और बुरे कर्मों का प्रतिफल है'*। शब्दकोशों में इसके ये अर्थ भी मिलते हैं : *फ़ैसला, आज्ञाकारिता, धर्मपंथ, धर्मविधान, इस्लाम-धर्म, आत्म निरीक्षण या कर्मावलोकन, उपाय, पुण्यकर्म, दशा, आदत, अधिकार और प्रभुत्व*। इस आयत में बताया है कि अल्लाह कर्मों का फल देते समय मालिक है, यानि जो फैसला चाहे सुना दे, वह आज भी मालिक है और सदा मालिक ही रहेगा। वह **मलक** यानि बादशाह की भांति निरा न्यायाधीश नहीं, कि उस का फैसला बस नीति और विधान के अधीन ही हो। और फरमाया कि मुक्ति प्रभु का प्रसाद है अतः उसी के अनुग्रह और उसी की इच्छा से प्राप्त होती है। न्याय का मूलाधार *अधिकार* है, और अल्लाह पर किसी का कोई **हक़** नहीं, हम सब उसकी **रबूबिय्यत, रहमानियत** और **रहीमीय्यत** के मोहताज हैं।

मालिकियत रूपी सद्गुण इस लोक में भी कार्यरत है, *क़बर* में भी होगा। *हश्र*[1], *सिरात*[2] तथा स्वर्ग व नरक -- इन सभी स्थानों और कालों का अल्लाह ही **मालिक** है। इस सद्गुण की संपूर्ण अभिव्यक्ति अगले लोक में ही होगी, क्योंकि वहां प्रत्येक जीव स्पष्ट रूप से जान लेगा कि उसको मिलने वाला दण्ड या पुरस्कार उसी के कर्मों का परिणाम मात्र है, और यह भी कि उसको कर्मफल देनेवाला अल्लाह ही है। क्योंकि उस लोक में प्रभु के ***जलाली*** (शक्ति और तेज संबंधी) और ***जमाली*** (सौन्दर्य और सौम्यता संबंधी) सद्गुणों का पूर्ण प्रदर्शन होगा। वहां ये सांसारिक साधन अदृश्य हो जाएं गे और प्रभु के सद्गुण नग्न रूप में कार्य करते नज़र आएं गे। क्योंकि यह तो संभव ही नहीं कि प्रभु ने मनुष्य के भाग्य में संपूर्ण आत्मज्ञान और संपूर्ण प्रतिफल की प्राप्ति न लिख दी हो। उस प्रतिफल को लोग वहां न केवल रूहानी तौर पर बल्कि खुलमखुला भी देख लें गे। अतः मनुष्य अपनी तमाम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्षमताओं के अनुरूप प्रतिफल पायेगा। इसी संपूर्ण लेखेजोखे और कर्मफल को कुर्आनी परिभाषा में **'जन्नत'** और **'जहन्नम'** कहते हैं। यद्यपि इसका आरंभ, जैसा कि ऊपर बताया जाचुका है, इसी सांसारिक जीवन में ही हो जाता है, परन्तु यह अपूर्ण जगत् इस के व्यापक और स्थायी प्रदर्शन को सहन नहीं कर सकता, इसी लिए परमात्मा ने इसके समग्र और सर्वांगिक प्रदर्शन के लिये दूसरे लोक

---

1. حشر ***हश्र,*** क़यामत के दिन लोगों का हिसाब किताब हेतु इकट्ठा किया जाना।

2. صراط ***सिरात,*** नरक के ऊपर का वह पुल जो बाल से ज़्यादा बारीक और तलवार से ज़्यादा तेज़ है, कयामत के दिन नेक लोग आसानी से उसके ऊपर से गुज़र कर जन्नत में चले जाएं गे, और पापी लोग नरक में गिर पड़ें गे।(अनुवादक)

पूर्वनिश्चित कर रखा है, जहां प्रभु का प्रतिपालन बिना किसी साधन या हेतु ही कार्यरत होगा, और जहां मनुष्य की नेकी प्रभुमिलन और उसकी बुराई प्रभुविच्छेद का कारण बनेगी, जिस को सादा शब्दों में स्वर्ग और नरक की संज्ञा दी गई है। सारांश यह कि हमारा यह लोक प्रभु के संपूर्ण प्रतिफल की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता।

मालिकियत (*मालिक* होने का भाव) और ***रहीमिय्यत*** (*रहीम* होने का भाव) में जो अन्तर है उसे भी समझ लेना चाहिए। **रहीम रूपी** सद्गुण भक्त को प्रार्थना और याचना की प्रेणा देता है, जबकि **मालिक रूपी** सद्गुण जहाँ एक ओर भक्त के भीतर एक असाधारण भय और हलचल रूपी अग्नि पैदा कर उसकी हसती को पिघला देता है, वहीं दूसरी ओर उसके अन्दर आशा और अभिलाषा की जोत जगा कर उसमें सच्ची विनीतता और विनम्रता उत्पन्न कर देता है। ***रहीमिय्यत*** मनुष्य को सफलता का पात्र बना देती है और ***मालिकियत*** द्वावरा प्रतिफल की प्राप्ति होती है। ***रहीमिय्यत*** में दया का भाव प्रधान है जबकि ***मालिकियत*** में अनुग्रह का भाव प्रधान है, क्योंकि अनुग्रह करते वक्त प्रभु मनुष्य का केवल कर्म और प्रयास ही दृष्टिगत नहीं रखता। इसी लिए इस्लाम कहता है कि मुक्ति का आधार मूलतः प्रभु का अनुग्रह है।

अल्-दीन (धर्म विशेष) से अभिप्रेत इस्लाम धर्म भी हो सकता है। उस सूरत में ***मालिकि यौमिद्दीन*** का अर्थ होगा *'वही इस्लाम के संपूर्ण काल का मालिक है, वही उसकी स्वयं रक्षा और सहायता करेगा'*, जैसा कि अन्यत्र फरमाया है : *"हम ने स्वयं यह उपदेश उतारा है, और हम स्वयं ही इसके रक्षक हैं"(15 : 9)*।

इन कतिपय आयतों में अल्लाह (परमात्मा) का वह स्वरूप संसार के सामने प्रस्तुत किया गया है जिस का प्रतिपादन कुर्आन शरीफ़ करता है। इन आयतों में अल्लाह के परम सौंदर्य, परम उपकार और उसके परम सद्गुणों का वर्णन मौजूद है। ***रबूबियत, रहमानियत, रहीमिय्यत और मालिकियत*** -- ये चारों मूल सद्गुण हैं। पहले सद्गुण का प्रदर्शन अति सार्वजनिक है, दूसरे का सामान्य, तीसरे का पात्र-विशेष और चौथे का अति पात्र-विशेष। प्रभु के इन्हीं मूल-सद्गुणों पर संसार का सारा कारोबार टिका हुआ है। इन सद्गुणों का संसार में प्रकटन इसी क्रम से हुआ है। ***अल्-हम्द*** से लेकर ***मालिकि यौमिद्दीन*** तक नास्तिकों, विधर्मियों, प्रकृतिवादियों, हिन्दुओं, ईसाइयों -- अर्थात् सभी धर्मों की असत्य मान्यताओं और धारणाओं का प्रखर और सूक्ष्म खंडन है। ***रबूबियत*** से कोई चीज़ बाहर नहीं, प्रत्येक सृष्ट-वस्तु, सजीव हो या निर्जीव, उसी के अधीन अपनी अपनी परिधि में क्रमविकास के चरण तय कर रही है। इस में उन वैज्ञानिकों का खंडन भी है जो क्रमविकास के सिद्धांत को धर्मविरुद्ध बताते हैं। इस में

प्रचीन हिन्दुओं के उस सिद्धांत का भी खंडन है जिस के अंतर्गत आत्मा और प्रकृति (matter) को परमात्मा की भांति अनादि और असृष्ट मान प्रभु का साझी ठहराया x;kgS **रहमानियत** समस्त जीवों को उन की जीवन-सामग्री उनके किसी पूर्वकृत कर्म के बिना ही उपलब्ध करा देती है। दयालुता का यह बिना बदल प्रदर्शन ईसाइयों के ***कफ़्फ़ारा*** (atonement) रूपी सिद्धांत का प्रत्यक्ष खंडन है, क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार परमात्मा की दयालुता केवल मनुष्य के कर्मों का ही प्रतिफल मात्र है, प्रभु का अनुग्रह नहीं। ***रहीमिय्यत*** प्रभु द्वारा उपलब्ध कराये गए साधनों से लाभान्वित होने वालों को उत्तम प्रतिफल और अपनी अपार दयालुता से पुरस्कृत करती है। इसका प्रदर्शन मनुष्यों के लिए विशेष है। ***रहीमिय्यत*** जीव को स्थाई मुक्ति का वचन देकर *आवागमन* के सिद्धांत का उन्मूलन करती है। *आवागमन* का आधार यही विचार है कि प्रभु जीव के सीमित कर्मों पर असीमित प्रतिफल नहीं दे सकता, अतः जीव को मजबूरन विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ***मालिकियत*** के अन्तर्गत प्रभु को इस बात का पूर्ण अधिकार हासिल है कि जिसे चाहे माफ़ भी कर दे। अतः इस में *आवागमन* और *कफ़्फ़ारा*, दोनों ही सिद्धांतों का खंडन है। इस प्रकार ये चार सद्गुण प्रभु के अन्य सभी नामों और वरदानों के लिए बतौर मूलस्रोत या उद्गमस्थन हैं। यदि प्रकृति रूपी दिव्यग्रन्थ पर दृष्टि डाली जाए तो सब से पहले प्रभु का **रब** सद्गुण ही नज़र आयेगा,फिर ***रहमानियत***, फिर ***रहीमिय्यत*** और अन्त पर ***मालिकियत*** । यही स्वाभाविक क्रम प्रभु ने अपने कथन-रूपी ग्रन्थ यानि कुर्आन शरीफ़ में रखा है। संसार के किसी और ग्रन्थ में प्रभु के सद्गुणों का इतना सुस्पष्ट, रोचक और क्रमगत प्रतिपादन मौजूद नहीं।

५ (हे इन संपूर्ण सद्गुणों के स्वामी अल्लाह !) हम तेरी ही उपासना करते हैं और तुझ ही से सहायता माँगते हैं।

(٥) اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ە

اِیَّاکَ ***इय्याक*** (बस तुझी को या तुझी से) : परमात्मा का व्यक्तित्व अदृष्ट और अगोचर है, हमारी भौतिक दृष्टि उसे निहार नहीं सकती, उसे केवल उसके सद्गुणों द्वारा ही पहचाना जा सकता है। प्रभुस्मरण और उस के सद्गुणों की पहचान से भक्त प्रभु के अति समीप आजाता, और उस की अन्तःदृष्टि मानो अपने प्रभुवर को निहारने लग जाती

है। इसी लिए प्रभु की चर्चा और उसके सद्‌गुणों के बखान के पश्चात् भक्त अपने प्रभुवर को अन्य पुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष के रूप में संबोधित कर कहता है : ایاک نعبد **इय्याक नअबुदु** , *" हे इन सद्‌गुणों के स्वामी परमात्मा ! अब तू मुझे नज़र आने लगा है अतः मैं तुझे ही संबोधित कर प्रार्थना करता हूँ ।"*तात्पर्य यह कि जब मनुष्य ऐसी सर्व–सद्‌गुणसंपन्न हस्ती से परिचित होता है, तो अदृश्य उस के लिए स्वतः दृश्यमान होने लगता है, तब वह स्वयं ही पुकार उठता है : اِیَّاکَ نَعْبُدُ **इय्याक नअबुदु** *यानि इन संपूर्ण सद्‌गुणों के स्वामी परमात्मा ! हम तेरी ही उपासना करते हैं, और तुझी से सहायता मांगते हैं, क्योंकि तेरे अनुग्रह बिना* ***इबादत*** *(उपासना) की* ***तौफ़ीक़*** *(सुअवसर) भी प्राप्त नहीं हो सकती*। इस प्रकार भक्त प्रभु के दरबार में उपस्थित होकर, उस के रंग में रंग कर और अपने भौतिक स्वरूप को तज कर पूर्णता, नित्यता और अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

نعبد *(हम इबादत करते हैं)* : ***इबादत*** के माना हैं, आज्ञाकारिता, सेवा, किसी छाप या नक्श को धारण करना। ***तरीकुन मुअब्बदुन***, वह मार्ग जो यातायात की अधिकता के कारण ऐसा हो गया हो कि पाँव के निशान सहज ग्रहण करने लगे। इस दृष्टि से **इबादत** का अर्थ होगा अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और विनम्रभाव से प्रभु की ऐसी उपासना कि मानो भक्त प्रभु के रंग में रंगा जाए। याद रहे कि मनुष्य स्थायी या शाश्वत उपासना के लिये ही रचा गया है :*"मैं ने जिन्नों और इन्सानों को पैदा नहीं किया किन्तु इस लिए कि वे मेरी उपासना करें"*(51 : 56)। इसी में इन्सान का अपना भला है। अल्लाह पूर्णतया निस्पृह और आवश्यकतारहित है उसे किसी की उपासना की ज़रूरत नहीं। अतः उपासना का उद्देश्य यही है कि भक्त प्रभु के सद्‌गुणों को आत्मसात करे। उपासना का ज़ाहिरी कलेवर मन की दशा बदलने और उसे प्रभु की ओर झुकाने मात्र के लिए है।

इस आयत में उपासना को प्रभु–सहायता पर प्राथमिकता दी गई है। वह इस लिए कि नीयत या संकल्प तो मनुष्य का ही कर्म होता है, परन्तु उसको व्यवहारिक रूप देना प्रभु द्वारा उपलब्ध कराये सुअवसर (***तौफ़ीक़***) के अधीन है। प्रभु के सद्‌गुणों पर चिन्तनमनन करने से मनुष्य की आत्मा प्रभु के द्वार पर झुकने के लिए तैयार तो हो जाती है, लेकिन उसे साथ ही यह एहसास भी दिलाती कि वह स्वयं में बिल्कुल बलहीन, आवश्यकताग्रस्त और अक्षम है, इसी लिए वह शक्ति और सामर्थ्य के संपुर्ण स्रोत परमात्मा से सहायता की याचना करता है। अतः शब्दों की यह अपूर्व क्रमबद्धता अल्लाह के ***जलाल*** (प्रतापी सत्ताधिकार) व ***जमाल*** (दयामय सौन्दर्य) और बन्दे की विनीतता की द्योतक है। उपासना की ललक मानव स्वभाव का अनिवार्य अंग है, इसी लिए प्रभु का परिचय पाते ही उस

की आत्मा स्वतः पुकार उठती है --اِیَّاکَ نَعۡبُدُ ***इय्याक नअबुद*** , और फिर स्वयं को अभावग्रस्त पाकर اِیَّاکَ نَسۡتَعِیۡنُ ***इय्याक नस्तअीन*** (हम तुझी से सहायता मांगते हैं) कहने पर विवश हो जाती है। उपासना को प्रभु-सहायता पर प्राथमिकता देने की एक वजह यह भी है कि भक्त को यह नियम समझा दिया जाए कि दुआ और सहायता की याचना से पहले प्रभु-अनुग्रह को आकर्षित करने के लिए साधनों को पैदा करना भी ज़रूरी है, और ये साधन उपासना द्वारा ही पैदा होते हैं। अतः उपासना को प्रभु-सहायता पर प्राथमिकता देना प्रकृति-संगत है, और यह क्रमबद्धता अति तथ्यपूर्ण और वैज्ञानिक है। اِیَّاکَ نَعۡبُدُ ***इय्याक नअबुद*** में ***रिया*** यानि आडंबर और दिखावे से बचने का गुर भी है, और اِیَّاکَ نَسۡتَعِیۡنُ ***इय्याक नस्तअीन*** में ***तकब्बुर*** यानि अभिमान और अहंकार से बचने का गुर है। ये दोनो बुराईयां मनुष्य को प्रभु-द्वार से दूर फैंक देती हैं। اِیَّاکَ نَعۡبُدُ में श्रद्धा और संपूर्ण भक्तिभाव की सीख है, और اِیَّاکَ نَسۡتَعِیۡنُ प्रभु-भय, दृढ़ता और प्रभु-सहायता के लिए है।

भाग्य के मामले में भी लोगों ने भिन्न-भिन्न तरह के विचार और मत प्रकट किये हैं, कुछ तो अतिरंजित और कुछ अल्परंजित हैं। इस आयत में इस समस्या का उपाय भी है। اِیَّاکَ نَعۡبُدُ में बताया है कि मनुष्य निर्णय लेने में एक हद तक स्वतंत्र है, ज्यों ही उसे सही मार्ग सुझाई देता है वह मुक्तकंठ से पुकार उठता है اِیَّاکَ نَعۡبُدُ । और यदि उसे किसी कारणवश कोई बाधा या शंका नज़र आए जिस का निवारण उस के बस में न हो तो वह स्वतः पुकार उठता है اِیَّاکَ نَسۡتَعِیۡنُ । ये शब्द जीव में निहित نفس امارہ ***नफ़्स अम्मारह*** , तमोगुण के महत्त्व की ओर भी संकेत करते हैं।

इस आयत में तथा अगली आयत में तमाम सर्वनाम बहुवचन प्रयुक्त हुए हैं। जिस का अर्थ यही है कि व्यक्तिगत उन्नति के लिए भी वातावरण का स्वस्थ और अनुकूल होना परमावश्यक है, दूसरे यह कि इस्लाम एक राष्ट्र प्रधान धर्म है, यह सब की उन्नति चाहता है। उपासना, सुदृढ़ता और सहायता की याचना का असल कमाल यही है कि वह सामूहिक हो, दूसरों को साथ लेकर जो सफलता हासिल की जाए वही वास्तविक सफलता है। और यह कि कोई भी इन्सान मार्गदर्शन पाने या दिव्य वरदानों का पात्र बनने से वंचित नहीं रखा गया है।

६ हमें बिल्कुल सीधे और खरे मार्ग पर चला और मंज़िल तक पहुंचा,

(٦) اِهۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِیۡمَ ۝

اهدنا ***इहदिना***, यह هدايت से है, जिस के चार अर्थ हैं : (1) प्राकृतिक तौर क्षमताएं और शक्तियां प्रदान करना और फिर उन्हें उसी के अनुरूप काम पर लगा देना, जैसे फरमाया *"उस ने प्रत्येक वस्तु को उसका अस्तित्व प्रदान किया और फिर मार्गदर्शन किया"* (20 : 50)।, (2) एक नेकी के बाद दूसरी नेकी की तौफ़ीक़ देना : जैसे, *"जो लोग मार्गदर्शन का अनुसरण करते हैं (अल्लाह) उन्हें मार्गदर्शन में बढ़ा देता है"*(47 : 17)।, (3) मार्गदर्शन की ओर बुलाना, जैसे, *"मार्ग दिखाना हमारी ज़िम्मेदारी है"*( )।(4) सफलता की अभीष्ट मंज़िल तक पहुंचा देना, जैसे, *"(स्वर्ग वाले) कहेंगे : सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिस ने हमें इस (जन्नत) का मार्ग दिखाया ! और हम स्वयं इस का मार्ग न पा सकते थे अगर अल्लाह हम को मार्ग न दिखलाता"*(7 : 43)। दूसरे शब्दों में यह कि एक *हिदायत* जीव की प्राकृतिक प्रवृत्ति है, दूसरी *हिदायत* जीव की ज्ञानेन्द्रियां हैं, तीसरी *हिदायत* जीव की बुद्धि है और चौथी *हिदायत* ***'वह्य'*** और इलहाम (revelation) है, इसी के अन्तर्गत प्रभु द्वारा नियुक्त महापुरुषों का सत्यावाहन और फरिश्तों की शुभप्रेरणाएं भी आती हैं। अत: اهدنا ***इहदिना*** के माना होंगे *' हमें मार्ग दिखा, उस पर चला और अन्ततः अभीष्ट मंज़िल तक पहुंचा।'* पुनः, प्रभु का मार्गदर्शन कोई सीमित वस्तु नहीं बल्कि यह सत्यरूपी तथ्यों की एक शृंखला है, जैसे कि फरमाया : *"जो लोग मार्गदर्शन का अनुसरण करते हैं (अल्लाह) उन्हें मार्गदर्शन में बढ़ा देता है"*(47 : 17)। सो इस प्रार्थना का तात्पर्य यह है कि *हे प्रभु ! तेरी हिदायतें व्यापक हैं, और ज्ञान–प्रज्ञान के मार्ग भी असीम हैं, अतः मुझे मार्गदर्शन में प्रवृद्ध करता रह* । सारांश यह कि यह दुआ बड़ी व्यापक है, मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र -- भौतिक हो या आध्यात्मिक, पुर्णतः इस के अन्तर्गत आजाता है।

ध्यान रहे कि यहां ***हिदायत*** से अभिप्रेत تَشَبُّہ بِالْاَنْبِيَاء ***'तशब्बुहुन बिल्अन्बियाअ'*** नबियों या अवतारों के रंग में रंग जाना है। صراط ***सिरात*** और طَرِيق ***तरीक़,*** दोनों ही अरबी शब्द हैं, दोनों का अनुवाद *'मार्ग या रास्ता'* किया जाता है। लेकिन طَرِيق उस वक्त तक صِراط नहीं जब तक उस में निम्न पांच बातें नहीं पाई जातीं : 1.उस में स्थायित्व हो, 2. वह यक़ीनी तौर पर मंज़िल तक पहुंचाने वाला हो, 3. वह निकटतम हो, 4. प्रत्यक्ष और सुपरिचित हो, 5. पथकों की संख्या आदि के अनुरूप उस में विशालता और सुविधा हो।

اَلْمُسْتَقِيم *सीधा और सरल* (रास्ता), किसी भी स्थान तक पहुंचने वाले विभन्न मार्गों में सीधा और सरल मार्ग हमेशा एक ही होगा, वही निकटतम और वही सब से छोटा भी होगा।

(७) صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ، غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَ لَا الضَّآلِّيْنَ ٥

(७) उन लोगों के मार्ग पर जिन को तू ने पुरस्कृत किया, जो न तो (बाद में) प्रकोप के भागी हुए और न पथभ्रष्ट।

اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ***अन्अमत अलैहिम*** (जिन को तू ने पुरस्कृत किया), ये مُنْعَم عَلَيْهِم ***मुन्अमुन अलैहिम*** (*इन्आम या पुरस्कार पाने वाले*) कौन लोग थे? इस की व्याख्या स्वयं कुर्आन शरीफ़ में मौजूद है, फरमाया : *"जिन पर अल्लाह ने कृपादृष्टि की अर्थात् नबियों और स़दीक़ों (सत्यनिष्ठों) और शहीदों और सालिह (सुकर्मी) लोगों पर, और ये कितने अच्छे साथी हैं"*(4 : 69)। यहां यह प्रार्थना है कि उन्हें भी इन महापुरुषों की भांति प्रभु का सामीप्य और प्रभुसंलाप का वरदान प्राप्त हो। अर्थात् हमें भी अपनी बिसात के अनुसार दिव्य-वरदानों का हिस्सा प्रदान कर। मानो यहां इन महापुरुषों की आध्यात्मिक सिधियों और शक्तियों का उत्तराधिकारी बनाये जाने तथा تشبہ بالانبیاء ***'तशब्बुहुन बिल्अम्बियाअ'*** नबियों या अवतारों के रंग में रंगे जाने की दुआ है। इस में गुरु, मुर्शिद, इमाम या पथप्रदर्शक तलाशने की प्रार्थना भी है। इस दुआ में सर्वनामों को बहुवचन लाकर यह प्रेरणा दी है कि मुसलमान को जहां अपने सामाजिक संघटन का ध्यान रखना चाहिए वहीं उसे प्रार्थना के समय केवल अपने ही लिए दुआ नहीं करनी चाहिए बल्कि अपनी दुआ में औरों को भी शामिल कर लेना चाहिए। ***इनआम*** हर उस उत्तम वस्तु को कहते हैं जो प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के निमित दी जाए। चाहे वह चीज़ भौतिक हो जैसे, ज्ञान, धन-संपति, प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य और सत्ताधिकार आदि, या आध्यात्मिक जैसे, ***वह्य*** और ***इलहाम***।

اِيَّاكَ نَعْبُدُ ***इय्याक नअबुद*** में विशुद्ध ***तौहीद*** (एकेश्वरवाद) की शिक्षा देकर, اِهْدِنَا ***इहदिना*** (हमें मार्ग पर चला) द्वारा ***शिर्क*** (बहुदेववाद) की जड़ काट दी है। इस में वक्त के ***इमाम*** (युग-सुधारक) के संग हो लेने की भी शिक्षा है, और सुदृढ़ रहने की प्रेरणा भी।

اَلْمَغْضُوْب ***अल्मग़ज़ूब :*** कर्तव्य के मामले में अपचय या कमी करने वाले, अनुचित विरोध करने वाले, ज्ञान संबंधी भ्रांतियों में ग्रस्त लोग, ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् उस पर अमल न करने वाले लोग, बाहरी छिलके पर संतुष्ट हो जाने वाले लोग। ***बुख़ारी*** में इस शब्द का द्योतक ***यहूदियों*** को माना गया है। اَلضَّالِّيْن ***अल्-ज़ालीन :*** अत्युक्तिवादी,

गलती से या जान बूझ कर संमार्ग से हट जाने वाले, एसे मार्ग पर चलने वाले जो मंज़िल तक नहीं पहुंचता, वे लोग जिन्हों ने अपने गुरु के साथ बेजा प्रेम किया और उसके प्रेम में मर्यादा भूल गए, और दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के बजाए अपने ही मतमतांतरों का अनुसरण कर भ्रांतियो में फंस गए, जैसे ***ईसाई*** लोग। الضالین शब्द अतिशयोक्ति का वाचक है, जिस से यही ज्ञात होता है कि इन लोगों का ज़माना लम्बा होगा। संपूर्ण क़ुर्आन में इन्हीं तीन समुदायों की चर्चा है, यही तीन समुदाय आदि से अन्त तक विद्यमान रहें गे। पहले منعم علیھم दूसरे المغضوب और तीसरे الضالین , इन्हीं का इतिहास सारे क़ुर्आन शरीफ़ में वर्णित है, और यहां भी उसी का संक्षिप्त वर्णन है।

किसी भी बड़े दरबार में याचिका पेश करने के तीन तरीक़ हैं : 1. याचिकादाता प्रार्थनापत्र स्वयं लिखे, 2. किसी अर्ज़ीनवीस से लिखवाए जो थोड़ा बहुत कानून जानता हो, 3. पदाधिकारी स्वयं (फ़ार्म के रूप में) प्रार्थनापत्र लिखवा दे। *सूर: अल्–फ़ातिहा* में प्रार्थना का तीसरा तरीका अपनाया गया है। जिस का सहज अर्थ यही है कि अल्लाह इस दुआ को कबूल करना चाहता है। मैं ने संसार के किसी धर्मग्रन्थ में ऐसी उत्तम और संपूर्ण प्रार्थना नहीं देखी, और न किसी इन्सान से सुनी, जो तमाम अच्छाइयों को आत्मसात करने और समस्त बुराइयों से बचने केलिए काफी हो। और जिस में मनुष्य की समस्त धार्मिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की पर्याप्त व्यवस्था हो। सर्वसंसार में इस प्रार्थना का कोई सदृश नहीं मिलता। इन्सान की महा आवश्यकता प्रभु–परिचय, प्रभु–मिलन तथा प्रभु के रंग में रंग जाना है। इस परमलक्ष्य की पूर्ति के पर्याप्त साधन इस दुआ में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त भी मनुष्य की पगपग असंख्य आवश्यकताएं हैं, यह दुआ उन सब को भी समेटे हुए है। इस दुआ में दुआ करने वाले को सिखया गया है कि वह कहे, *हे महा प्रभु ! हमारा आरंभ भी अच्छा हो और अन्त भी, हमें इनआम पाने वाले लोगों में से बना, और फिर ऐसा न हो कि पुरस्कृत होने के पश्चात् हम अति और अपचय के कारण ज्ञान संबंधी अथवा व्यवहार संबंधी त्रुटियों में फंस कर* ***मग़ज़ूब*** *(प्रभुप्रकोप के भागी) और* ***ज़ालीन*** *(पथभ्रष्ट) बन जाएं और यहूदियों और ईसाइयों के पदचिन्हों पर चल पड़ें। हे प्रभुवर ! हमें तौफ़िक़ दे कि हम वक़्त के इमाम के संग सुदृढ़तापूर्वक रहें।*

क़ुर्आन शरीफ़ की इस दुआ का इंजील (Gospel) की सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना से मुकाबला करने से पता चलता है कि इंजील की प्रार्थना में भी असल प्रार्थना से पहले एक भूमिका है, और क़ुर्आन शरीफ़ में भी, लेकिन दोनों भूमिकाओं में एक स्पष्ट अंतर है। असल दुआ से पहले क़ुआन शरीफ़ ने अल्लाह के परम पावन व्यक्तित्व और सद्गुणों को प्रतिपादित किया है, और बताया है कि प्रभु की ***रबूबियत*** एक सार्वजनिक अनुग्रह की नींव डालती है,

रहमानियत इस अनुग्रह को समस्त जीवों में प्रकट करती है, जबकि ***रहीमिय्यत*** इस वरदान को मनुष्यों के लिए विशिष्ट कर देती है, और ***मालिकियत*** द्वारा इस वरदान का अन्तिम फल प्रकट होता है। इन चार सद्‌गुणों के बखान के अलावा, जिन की व्याख्या से सारा कुर्आन एक उफानी समुद्र की भांति तरंगित है, स्वयं इस सूरत की आयतों के बीच भी एक अपूर्व प्रासंगिक संबंध और तरतीब पाई जाती है। ***रुबूबिय्यत*** के मुकाबिल बन्दे की ***अबूदियत*** यानि उसकी दीन-हीनता है, ***रहमानियत*** के मुकाबिल बन्दे की अडिगता है, ***रहीमिय्यत*** के मुकाबिल मार्गदर्शन-व्यवस्था है और ***मालिकियत*** के मुकाबिल प्रभु का सर्वरूपेण सत्ताधिकार है। ईश्वरीय अनुग्रह के इन चार मूलस्रोतों की चर्चा के बाद अगली आयतों में जहां इन दिव्य अनुग्रह-स्रोतों से लाभांवित होने की सीख है, वहीं बन्दे को यह भी बता दिया कि ***इबादत*** (उपासना) का एकमात्र हक़दार अल्लाह है जो इन मूल अनुग्रह-स्रोतों का धारक है, अतः उसी से प्रार्थना करनी चाहिए। यह भी एक वास्तविकता है कि दुआ की स्वीकृति पर हमारा बस नहीं, यह बात पूर्णतया प्रभु के अधिकार में है। इस तरह यहां प्रार्थना में पूर्ण श्रद्धा और विनीतता का महत्व भी समझाया गया है। परन्तु इंजील की प्रार्थना में ऐसी कोई बात नहीं। और फिर इंजील की प्रार्थना में भक्त को उपासना और दुआ की ओर प्रेरित करने वाली भी कोई बात नहीं, जबकि कुर्आन की दुआ में प्रेरेणा की पर्याप्त सामग्री मौजूद है। इंजील की दुआ पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि मानो परमात्मा को संपूर्ण पवित्रता प्राप्त ही नहीं, वह अपने सद्‌गुणों की पूर्ति के लिए इन्सानों की दुआओं का मोताज है। इंजील के शब्द हैं : *"हे हमारे स्वर्गिक पिता, तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग मे पूरी होती है वैसे पृथ्वी पर भी हो"*(मत्ती 6 : 9,10)। इंजील की दुआ प्रभु के राज्य के आने का वचन देती है, परन्तु कुर्आन की दुआ के अनुसार वह राज्य पहले से ही हमारे बीच मौजूद है। बल्कि यदि अल्लाह की ***रुबूबिय्यत, रहमानियत, रहीमिय्यत और मालिकियत*** क्षण मात्र के लिए भी हम से अलग होजाए तो संपूर्ण ब्रह्मांड अस्तव्यस्त हो जाएगा। इंजील की दुआ में दैनिक रोटी के लिए प्रार्थना है, जबकि कुर्आन की दुआ में समस्त दिव्य वरदानों की याचना और तमाम मानवीय क्षमताओं और शक्तियों की पूर्ति की प्राथना है। दूसरे शब्दों में यहां संसार के समस्त महा पुरुषों (पैग़म्बरों-अवतारों और संतों-वलियों) के रंग में रंगे जाने की दुआ है। इंजील के विपरीत कुर्आन की दुआ सिर्फ पापों की क्षमा तक सीमित नहीं, बल्कि यहां आध्यात्म की उस चरम सीमा को प्राप्त होने की दुआ है जहां पहुंचकर मनुष्य से पाप हो ही नहीं सकता। फिर इंजील की प्रार्थना में परमात्मा के लिए ***'अब'*** (यानि पिता) का शब्द प्रयुक्त हुआ है और कुआन की दुआ में

रब्ब का, जिस के भाव की असीम व्यापकता का अन्दाज़ा लगाना मनुष्य के बस की बात नहीं। **रब्ब** का स्थान **अब** से निश्चय ही अति उच्च और परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कुर्आनी दुआ कोरी दुआ ही दुआ नहीं, इस की क़बूलियत का वादा भी दिया गया है, और बताया है कि मुस्लिम समाज में भी बाज़ लोग منعم عليهم *यानि अल्लाह की ओर से इनआम अर्थात् दिव्य पुरस्कार पाने वाले होंगे, और यह कि हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के रूहानी प्रसाद का द्वार सदा के लिए खुला हुआ है।*

दुआ क्या है ? अल्लाह की शक्ति से शक्ति और उस के ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करने की विनम्र प्रार्थना, और अपनी ज़रूरतों और अभावों के लिए अपने वास्तविक ***रब्ब, रहमान, रहीम और मालिक*** को पुकारना। यह कोई अंधविश्वास या भ्रांत धारणा नहीं, बल्कि लाखों बुद्धिमानों और पवित्रात्माओं का व्यवहारिक अनुभव है, उन्हों ने मांगा और पा लिया, और जिन्हों ने तलाश किया उन्हें मिल गिया। यह रीति कोई नवीन रीति नहीं, इस का नकश मानव-प्रकृति पर तब से अंकित है जब से इन्सान इस दुनिया में आया है।

غَيْرِالْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ ***ग़ैरिल्मग़ज़ूबि अलैहिम*** *(जो न तो (बाद में) प्रकोप के भागी हुए)* की व्याख्या कुर्आन के अन्तिम भाग की 111वीं सुरत سورة تبت में है, और وَلَا الضَّالِّيْن ***व लद्दालीन*** (*और न पथभ्रष्टों के*) की व्याख्या 112वीं सूरत سورة الاخلاص में है। इस तरह कुर्आन शरीफ़ के आरम्भिक और अन्तिम विषय में एक विचित्र समन्वय पाया जाता है। इस के बाद معوذتين हैं अर्थात् वे दो अन्तिम सूरतें जिन मे पभु से शरण की याचना की गई है।

आमीन : यह कुआन का भाग नहीं, लेकिन हदीस में है कि जब इमाम नमाज़ में सूरः *अल्-फ़ातिहा* का पाठ समाप्त करे तो तुम " आमीन " कहो (*अल्-बुख़ारी*)। इस के माना हैं : *" हे अल्लाह ! हमारी यह प्रार्थना कबूल फरमा "।*

(Wednesday,1-10-1997,12.30 P.M., Batamaloo,Srinagar)

हमारे कुछ अन्य ख्यातिप्राप्त प्रकाशन

क़ुर्आन शरीफ़ की अंग्रेज़ी टीका

♦ "मौलाना मुहम्मद अली साहिब ने क़ुर्आन शरीफ़ का अंग्रजी में अनुवाद करके इस्लाम की जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है उस की महत्ता को स्वीकार न करना मानो सूरज की रोशनी से इन्कार करना है। इस अनुवाद द्वारा न सिर्फ हज़ारों ग़ैरमुस्लिमों ने इस्लाम के शीतल आँचल में शरण ली बल्कि हज़ारों मुसलमान भी इस्लाम के और अधिक निकट आगए। जहाँ तक मेरा अपना संबंध है मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि यह अनुवाद गिनती की उन चन्द किताबों में से है जो चौदाह पंद्राह साल पहले ,जब मैं नास्तिकता और अधर्म रूपी अँधाकरों की गहराइयों में भटक रहा था ,मेरे लिए मार्गदीप बन कर आई और मुझे इस्लाम का मार्ग दिखाया।"

(मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रअ] ,क़ुर्आन शरीफ़ के मशहूर टीकाकार)

♦ "यह क़ुर्आन शरीफ़ का अंग्रेज़ी भाषा में प्रमाणिकतम अनुवाद है ,इस में ज्ञानप्रज्ञान से भरे हुए फुटनोट दर्ज हैं।"

(मौलाना मुहम्मद अली "जौहर" आफ़ ख़िलाफत मूवमेंट)

क़ुर्आन शरीफ़ की विश्वकोशीय उर्दू तफ़सीर (टीका)

♦ "(मौलाना मुहम्मद अली साहिब[रअ] का) यह अनुवाद साम्प्रदायिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति से लगभग रिक्त है ,मौलाना साहिब ने बड़ी सावधानी से अनुवादक की भूमिका निभाई है .... उन्हों ने यह अनुवाद बड़ी श्रद्धा और आम जनमत को दृष्टि में रखते हुए किया है।"

(डा. सालिहा अब्दुल्हकीम शरफ उद्दीन की कृति *'क़ुर्आन हकीम के उर्दू तराजिम'*)

♦ "यह इतनी उच्च कोटि की तफ़सीर है कि शायद उर्दू भाषा का साहित्य रूपी ख़ज़ाना ऐसे कांतिमान रत्न दुर्लभता से भी न निकाल सके।" (मौलाना ज़फर अली ख़ाँ[रअ] ,संपादक अखबार *'ज़मीनदार'* लाहौर)

हदीस सार (**Manual of Hadith**)

♦ ".....इस तरह इस के विभिन्न अध्यायों में वे सारी हदीसें (और आयतें) आ गई हैं जिन की एक मुसलमान को अपने दैनिक जीवन में आवश्यकता पड़ सकती है ...... यह इतना बड़ा महाकार्य है जो एक *'अहमदी'* के हाथों सम्पन्न हुआ ,इस श्रेष्ठ कृति की नुकताचीनी या छिद्रान्वेषण कोरी मूर्खता है।" (मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रअ])